श्री
गुरुजी और
राजनीति
श्री गुरुजी
जन्म
शताब्दी वर्ष

श्री गुरूजी और राजनीति

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर उपाख्य श्री गुरुजी के विचारों से संबंधित 'श्री गुरुजी समग्र' का उपोद्घात् अथवा भूमिका लिखते हुए संघ के वर्तमान सरसंघचालक श्री कुप्प. सी. सुदर्शन ने जो भावनायें अभिव्यक्त की हैं, वे उनसे संबंधित समग्र अध्ययन-सामग्री का मनन करने के लिए बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण हैं। उनके बहुआयामी राष्ट्र-समर्पित जीवन पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं कि "भारतीय नवोत्थान की यह विशेषता रही है कि प्रत्येक राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक नवरचना के पूर्व आध्यात्मिक जागरण होता रहा है। अध्यात्म-प्रवण श्री गुरुजी ने संघ-कार्य हेतु अपने-आपको समर्पित तब किया जब डाक्टर साहब की बीमारी की अवस्था में सेवा करते हुए मातृभूमि के साथ तद्रूप उनके व्यक्तित्व के दर्शन हुए। इस प्रकार राष्ट्र के सर्वांगींण विकास हेतु दोनों धाराओं का उनमें संगम हुआ। रामकृष्ण-विवेकानन्द की आध्यात्मिक कर्मचेतना डा. हेडगेवार की राष्ट्रीय कर्मधारा के साथ जुड़ गयी। पूजनीय श्री गुरुजी के सारे विचारों के मूल में राष्ट्र की आध्यात्मिक चेतना के हमें दर्शन होते हैं और यही उनके जीवन का स्थायी भाव रहा है।"

ऋषि परम्परा के वाहक

संघ के वर्तमान सरसंघचालक श्री कुप्प.सी. सुदर्शन के उपर्युक्त कथन में श्री गुरुजी के सम्पूर्ण जीवन का सार निहित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री गुरुजी अपने सम्पूर्ण जीवन-काल में प्राचीन भारत की श्रेष्ठ मंत्रदृष्टा ऋषि-परम्परा के अनुरूप आधुनिक भारत के स्वनामधन्य रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, एवं योगिराज श्री अरविन्द के समान उसके एक श्रेष्ठ संवाहक बने रहे। यही कारण है कि राष्ट्र-जीवन से संबंधित एक भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसके विषय में उन्होंने अपने इस सनातन राष्ट्र

और उसके करोड़ों देश-बन्धुओं के साथ भारत में सक्रिय राजनीतिक दलों और उनके नेताओं एवं कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन न किया हो। श्री गुरुजी का राजनीतिक चिन्तन दलगत राजनीति अथवा राजनीतिक दांव-पेंचो से परे राष्ट्र के व्यापक हित एवं उसके आधारभूत सिद्धान्तों पर केन्द्रित रहा है।

भारत का कृतयुग

सृष्टि के अनादिकाल से इस देश में समाज-रचना और उसके सफल संचालन में ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले मंत्रदृष्टा-ऋषि-महर्षियों द्वारा सम्पूर्ण समाज, मानवता एवं सृष्टि जगत के साथ अपने-आपको एकाकार करके सभी प्राणियों में साक्षात् नारायण के दर्शन करने वाले और वासनापूरित इन्द्रिय सुखों का परित्याग कर उससे ऊपर उठने वाले महान पुरुषों को समाज एवं मानवता का मार्गदर्शक माना गया है। किन्तु कालजयी समाज के निर्माण के लिए घोर परिश्रम करते हुए भीष्म संकल्प के साथ सत्संस्कारों की व्यावहारिक योजना को सफलतापूर्वक लागू किया जाना अनिवार्य है। सौभाग्यवश इस श्रेष्ठतम कार्य को हमारे पूर्वजों ने भारतीय इतिहास के अत्यन्त स्वर्णिम युग में इसे संभव कर दिखाया था और उसे कृतयुग अथवा सतयुग की संज्ञा प्रदान की थी।

धर्मदण्ड

श्री गुरुजी ने हिन्दू आर्ष ग्रन्थों में उल्लिखित उस स्वर्णिम काल की सामाजिक स्थिति और समाज व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए यह भी कहा था कि उस समय का सम्पूर्ण समाज श्रेष्ठतम चारित्रिक गुणों से युक्त था और प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना अभ्युदय और निःश्रेयस अथवा लौकिक एवं आत्मिक-आध्यात्मिक प्रगति करने का समान सुअवसर प्राप्त था। फलतः सम्पूर्ण समाज को स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित रखकर संगठित समाज-जीवन का संचालन करने में किसी तरह की कोई कठिनाई होने की आशंका नहीं हो सकती थी क्योंकि समाज के सभी घटक या सदस्य आपस में स्वार्थरहित और स्नेहपूर्ण आत्मीय संबंधों से युक्त थे और धर्म उनके सम्पूर्ण जीवन का नियमन या नियंत्रण करता था।

हिन्दू जीवन वाङ्मय में वर्णित इस धर्म-आधारित श्रेष्ठतम स्थिति का उल्लेख करते हुए ही हमारे तत्वज्ञानी मंत्रदृष्टा ऋषि-महर्षियों नें किसी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था अथवा राज्य की आवश्यकता अथवा अपरिहार्यता नहीं अनुभव की थी। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा था;.

न राज्यं न च राजासीत् न दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

पश्चिम की अज्ञानता

इस आदर्श सामाजिक स्थिति और सामाजिक व्यवस्था के साथ ही श्री गुरुजी ने यह भी स्पष्ट किया था कि आधुनिक समय में पश्चिमी जगत के अनेक दार्शनिकों एवं विचारवेत्ताओं नें अराजकतावाद, श्रेणी समाजवाद, वैज्ञानिक समाजवाद अथवा मार्क्सवाद आदि विचारधाराओं के आधार पर राज्यविहीन समाज कायम होने की अवधारणा या संकल्पना मानव समाज के सम्मुख प्रस्तुत की है। किन्तु राज्य की गैर मौजूदगी अथवा राज्य के अस्तित्व में न रहने की अवस्था में समाज-जीवन का संचालन स्वस्थ रूप में कैसे हो सकेगा, इसका कोई सुस्पष्ट चिन्तन पश्चिमी जगत के विचारक आज तक नहीं कर सके हैं क्योंकि उनके चिन्तन में श्रेष्ठतम तत्व का पूर्णतया अभाव है जबकि भारतीय अथवा हिन्दू चिन्तन में सम्पूर्ण व्यवस्था धर्म के इसी श्रेष्ठतम तत्व पर आधारित होने की बात सुस्पष्ट शब्दों में कही गई है।

राज्य-सत्ता की प्रकृति

श्री गुरुजी के अनुसार, हिन्दू जीवन-दर्शन अथवा हिन्दू-वाङ्मय में वर्णित समाज-जीवन की इस आदर्श स्थिति के बावजूद जब तक वह अवस्था स्थायी व्यावहारिक रूप ग्रहण नहीं करती तब तक समाज की धारणा करने अथवा स्वस्थ सामाजिक जीवन के संचालन के लिए राज्य अथवा राज्य-सत्ता की आवश्यकता भारत के मनीषियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। किन्तु राज्य-सत्ता की इस अपरिहार्यता या अनिवार्यता को स्वीकार करने के बाद भी इस देश के मनीषियों ने स्पष्ट रुप से यह भी घोषणा की कि अनियन्त्रित राज्य-सत्ता समाज

का कल्याण करने अथवा उसे सुख पहुंचाने के स्थान पर उसे दुःख देकर दासता की दुःस्थिति उत्पन्न कर देगी। इसका कारण बताते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि राज्य-सत्ता की प्रकृति में मद और मोह दोनों विद्यमान रहते हैं। अतः राज्य-सत्ता पर बैठे हुए व्यक्ति या व्यक्ति समूह में अपनी सत्ता के लिए भविष्य में कभी भी और किसी समय भी संकट बन जाने वाले विरोधियों का दमन कर अत्याचार करने की सहज प्रवृत्ति होती है। फलस्वरूप राज्य-सत्ता द्वारा सम्पूर्ण समाज का सभी प्रकार का लोक-कल्याण हो पाना कभी भी संभव नहीं है। 'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता के श्रेष्ठ आदर्शों की उद्घोषणा के साथ ईसाइयत के सन् १७८९ में फ्रांस के अन्दर निरंकुश और घोर अत्याचारी राजतन्त्र की समाप्ति के विरुद्ध हुई सफल क्रान्ति का अन्ततः क्या परिणाम हुआ? क्रान्ति के सफल संचालन में एक-दूसरे के साथ कन्धे से कंधा लगाकर एकजुट संगठित शक्ति के पुंज बने यही पारस्परिक सहयोगी एक-दूसरे के कट्टर अथवा घोर शत्रु बन बैठे तथा उन्होंने सत्ता हथियाने के बाद अपने ही सहयोगियों का न केवल घोर दमन किया, पाशविक यातनायें दी अपितु उन्हें मौत के घाट तक उतार दिया। फलतः जिस क्रान्ति को सफल बनाने के लिए क्रान्ति के उपासकों, अनुयायियों और नेताओं ने अपना सर्वस्व दांव पर लगाकर अपने मानवीय प्रयासों की पराकाष्ठा कर दी थी उन्होंने अल्प समय में ही उस क्रान्ति का इतना वीभत्स रूप फ्रांसीसी समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया कि वहां का सामान्य जन यह कहने को विवश हो गया कि 'क्रूरता तेरा नाम क्रांति है। (Cruelty thy name is revolution)

अत्याचार का सिलसिला

फ्रांसीसी राज्य क्रांति की यह घटना एकाकी नहीं है। ईसाइयत के सन् १९१७ में रूस में लेनिन और ट्राट्स्की के नेतृत्व में हुई कथित सोवियत क्रांति का इतिहास तो उससे भी अधिक वीभत्स है। कहा तो यहां तक जाता है कि इस रूसी क्रांति के निर्विवाद नेता लेनिन को उसके ही एक अनुयायी स्टालिन ने राज्य सत्ता पर अपना एकाधिकार प्रस्थापित करने के लिए उसकी बीमारी की अवस्था में उसे विष देकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। क्रांति के अन्य अपने से वरिष्ठ

सहयोगियों को चुन-चुन कर मौत के घाट उतार दिया। लेनिन के अप्रतिम सहयोगी तथा लेनिन द्वारा क्रांति को संभव बनाने का जिसने अथक परिश्रम कर अत्यन्त प्रभावशाली तन्त्र खड़ाकर उसका नेतृत्व लेनिन को सौंपकर जो उस रूसी क्रांति की अग्रतम पंक्ति में रहा वह ट्राट्स्की लेनिन की मृत्यु के बाद अपने जीवन की रक्षा हेतु सुदूर मेक्सिको भाग जाने पर भी अपना जीवन सुरक्षित न कर पाया और स्टालिन ने अपने विश्वस्त हस्तकों द्वारा उसे भी मरवा दिया। लाखों लोगों को साइबेरिया के श्रमिक बन्दीगृहों में अमानवीय एवं पाशविक बर्बरता के साथ मौत के घाट उतार देने की घटना सर्वविदित है। सत्ता की इस अनियन्त्रित भूख ने ही २५ जून, १९७५ को इस अपने देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपातकाल लागू कर अपने से मतभेद रखने वाले राजनेताओं सहित लाखों लोगों को न केवल सीखचों के पीछे ठूंस दिया था अपितु ऐसे बर्बर अत्याचार किए जिससे साम्राज्यवादी ब्रिटिश सत्ता का दमन-चक्र भी फीका पड़ गया और जयप्रकाश नारायण सरीखे सर्वत्यागी, निःस्वार्थ नेता को भी अधमरा कर डाला।

पश्चिम की केन्द्रीकृत व्यवस्था

आधुनिक समय में पश्चिमी जगत सहित संसार के समस्त देशों में क्रियाशील राज्य-व्यवस्था के घातक स्वरूप को श्री गुरुजी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया था। उनका सुनिश्चित मत था कि इन सभी राज्य-सत्ताओं की मूल प्रकृति केन्द्रीकरण की व्यवस्था से संबंद्ध है। उनके पूंजीवादी, मार्क्सवादी अथवा लोक-कल्याणकारी राज्य की संकल्पना से उनमें किसी तरह का सारभूत अन्तर नहीं उत्पन्न होता क्योंकि उनकी मूल प्रवृत्ति केन्द्रीकरण पर ही अवलम्बित है। फलतः इन सभी राज्य-व्यवस्थाओं में शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक जीवन, आर्थिक संरचना, व्यापारिक एवं वाणिज्यिक कार्यप्रणाली आदि सभी पर राज्य का अनियंत्रित एकाधिकार बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार के सम्पूर्ण मानवीय जीवन को व्याप्त करने वाली राज्य-सत्ता अथवा राज्य-व्यवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूरी तरह उपेक्षा, अवहेलना और अवमानना करके उसे केवल राज्य के क्रीतदास के रूप में जीवन-यापन करने की आजादी या अधिकार मात्र रह जाता है और वह राज्य-रूपी, मशीन

या यंत्र का एक पुर्जा बन जाता है। उसके अपने गुणों, इच्छाओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं आदि के आधार पर अपना विकास करने की कोई संभावना नहीं रहती। अतः ऐसी राज्य-व्यवस्था व्यक्ति, समाज और मानव जाति के लिए अत्यन्त हानि पहुंचाने वाली है।

दुष्परिणाम

श्री गुरुजी ने यह भी स्पष्ट किया था कि राज्य-सत्ता कभी भी स्थायी नहीं रहती। उसमें आन्तरिक एवं वाह्य कारणों से परिवर्तन का एक सतत क्रम चलता रहता है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि आन्तरिक कारणों से राज्य-सत्ता अथवा उसके स्वरूप में आने वाले परिवर्तन से समाज और राष्ट्रजीवन की कोई हानि नहीं होती। किन्तु श्री गुरुजी का सुनिश्चित मत था कि आन्तरिक कारणों से राज्य-सत्ता और उसके स्वरूप में होने वाला परिवर्तन समाज और राष्ट्र जीवन को अत्यधिक प्रभावित करता है और उसके परिणाम अत्यन्त दूरगामी होते हैं। इसका कारण स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने बताया था कि विभिन्न राजनीतिक दलों में प्रायः बहुत अधिक अन्तर होता है। अतः राज्य-व्यवस्था में आया हुआ परिवर्तन उसके स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित करता है।

उनके इस कथन की पुष्टि के लिए आधुनिक भारत की राजनीतिक व्यवस्था में आये एक-दो परिवर्तनों के घटनाक्रम से इसे भली-भांति समझा जा सकता है। मई १९९८ में भारत की तत्कालीन केन्द्र सरकार ने पोखरण में सफल आणविक परीक्षण करके अपने राष्ट्र को एक परमाणु-शक्ति सम्पन्न देश बनाकर उसकी सामरिक क्षमता, राष्ट्रीय सीमाओं की पुख्ता सुरक्षा व्यवस्था, विश्व के राष्ट्रसमुदाय में भारत के राष्ट्रीय सम्मान एवं आत्मगौरव आदि में अद्वितीय और आशातीत अभिवृद्धि कर दी। इससे चिढ़कर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, जापान, आस्ट्रेलिया आदि संसार के अनेक देशों ने भारत पर नाना प्रकार के आर्थिक-वित्तीय और सामरिक प्रतिबन्ध लगा दिए। स्वयं अपने देश में संसद के अन्दर मान्यताप्राप्त प्रमुख विपक्षी दल ने इस पोखरण-परीक्षण के आधार पर भारत को परमाणु शक्ति-सम्पन्न देश बनाने का खुला विरोध किया। वामपंथी मार्क्सवादी कम्युनिस्टों द्वारा इस विरोध का स्वर अत्यन्त तीखा था। फिर भी

तत्कालीन केन्द्र सरकार ने आन्तरिक और जागतिक दबाव के सम्मुख झुकने से इंकार करके न केवल भारत के राष्ट्रीय आत्मगौरव में आशातीत वृद्धि की अपितु देशवासियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करते हुए अत्यन्त कुशल प्रशासनिक क्षमता एवं नीति-चातुर्य के द्वारा उस विरोध को पूरी तरह विफल भी कर दिया।

तत्पश्चात् मई, २००४ में आन्तरिक आधार पर भारत की नवीन सरकार का गठन करने के उद्देश्य से हुए लोकतांत्रिक चुनाव से राज्य सत्ता में परिवर्तन हो गया। अब वे राजनीतिक दल और राजनेता सत्तासीन हो गए जिन्होंने सन् १९९८ में पोखरण आणविक परीक्षण का खुला विरोध किया था। फलतः भारत का आणविक अनुसन्धान कार्यक्रम शिथिल पड़ गया और उसके साथ ही भारत की परमाणुविक शक्ति और क्षमता को सीमित कर देने संबंधी अमेरिका के प्रस्ताव पर भारत के प्रधानमंत्री ने स्वीकृति की मुहर लगा दी और भारत के गैर सैनिक आणविक कार्यक्रम को अन्तरराष्ट्रीय निरीक्षण के लिए खोलकर राष्ट्र की संप्रभुता तक पर गहरा आघात कर दिया।

संचालन भिन्नता के परिणाम

श्री गुरुजी राजनीतिक व्यवस्था में आन्तरिक कारणों से आने वाले बदलाव के साथ ही नीतियों के संचालन और क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों की गंभीरता को भी बड़ी सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से समझते थे। उनका स्पष्ट रूप से यह कहना था कि इस आधार पर भी राष्ट्र के सम्मान, आत्मगौरव, सुरक्षा आदि में अत्यन्त गंभीर परिवर्तन उपस्थित हो सकता है। उदाहरणार्थ १५ अगस्त, १९४७ को भारत के राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद उसके सम्मुख जम्मू-कश्मीर और निजाम-हैदराबाद की रियासतों से संबंधित दो अत्यन्त गंभीर तथा महत्वपूर्ण समस्यायें उपस्थित हुईं। इतिहास साक्षी है कि निजाम-हैदराबाद से संबंधित समस्या का प्रभावपूर्ण तरीके से हल निकालने में अधिक समय नहीं लगा किन्तु जम्मू-कश्मीर का मसला आज ५८ वर्ष व्यतीत होने के बाद भी एक नासूर बना हुआ है। यह दोनों ज्वलंत घटनायें एक ही शासन के अन्तर्गत नीतियों के संचालन और क्रियान्वयन की भिन्नता से उत्पन्न होने वाले अन्तरों को भली-भांति स्पष्ट कर देती हैं।

बाह्य परिवर्तन घातक

श्री गुरुजी ने बाह्य कारणों अथवा बाहरी आक्रमणों से राज्य-सत्ता के बदलने के भीषण परिणामों से भी राष्ट्र और मानवता को पूरी तरह सचेष्ट किया था। उनका कहना था कि मानव इतिहास ऐसी अनेक घटनाओं से भरा पड़ा है जिनमें बाहरी आक्रमण के फलस्वरूप राज्य-सत्ता के स्वरूप में आने वाले परिवर्तनों ने आक्रान्त राष्ट्र की संस्कृति और अस्मिता ही समाप्त करके उन्हें इतिहास के पन्नों तक में ही सीमित करने पर बाध्य कर दिया। ईरान, मिस्र, बेबीलोनिया, यूनान, मेक्सिको, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया सहित अफ्रीकी महाद्वीप के अनेक देशों की रामकहानी इसी प्रकार की है। इसी तथ्य और विश्लेषण की पुष्टि करते हुए एक सुप्रसिद्ध अफ्रीकी राष्ट्र-नेता जोमो केन्याता ने यूरोपीय जातियों के आक्रमण के फलस्वरूप लम्बे समय तक गुलाम बने रहने पर बड़ी ही सटीक टिप्पणी करते हुए कहा था कि "जब आप लोग हमारे देश में आए तब अपने राष्ट्र की भूमि पर हमारा अपना स्वामित्व था और आपके हाथ में बाइबिल थी। किन्तु फिर आपने ऐसा सम्मोहन-जाल फैलाया कि उससे लम्बे समय तक भ्रमित होकर हम अर्द्ध-निद्रा में पड़े रहे और जब हमारी आंखें खुली तो हमने देखा कि अब हमारी भूमि के स्वामी तो आप बन गए हैं और बाइबिल आपने हमारे हाथों में थमा दी है।"

संस्कृति की जीवन्त शक्ति

कहने का तात्पर्य यह है कि परकीय या विदेशी आक्रमण के फलस्वरूप राज्य-सत्ता और उसके स्वरूप में आने वाला परिवर्तन संबंधित आक्रान्त राष्ट्र के अस्तित्व, धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला, श्रेष्ठ सामाजिक जीवन और राष्ट्र के मान बिन्दुओं तक को समाप्त कर देता है। इतिहास साक्षी है कि इस्लाम और ईसाइयत ने आक्रमणकारी के रूप में संसार के प्रायः समस्त देशों में यही किया है। भारत में अपने दुष्चक्र में वह इसलिए सफल नहीं हो सके क्योंकि भारत के मंत्रदृष्टा ऋषि-महर्षि मनीषियों ने अपनी पवित्र मातृभूमि की शक्ति का केन्द्र राज्य, राजा का सिंहासन और राज्याधिकारियों को नहीं बनाया था। उसकी संजीवनी शक्ति उन्होंने उसकी कालजयी संस्कृति में निहित की थी जोकि धर्म पर आधारित थी और आज भी है।

हथेली पर सरसों उगाना

राज्य-सत्ता के नित्य नूतन परिवर्तित स्वरूप अथवा उसकी प्रकृति का अत्यन्त सटीक विश्लेषण श्री गुरुजी ने किया है। उनका सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित मत था कि राज्य-सत्ता और उस पर आधारित राजनीति निहित स्वार्थों से ऊपर नहीं उठ पाती और इसलिए उस क्षेत्र में सक्रिय व्यक्तियों अथवा राजनेताओं की कथनी और करनी में प्रायः कोई साम्य न होकर उसके मध्य बड़ा भारी अन्तर रहता है तथा अवसरानुकूलता या अवसरवादिता का परिचय देते हुए राजनीति एक वारांगना की भांति अपना स्वरूप परिवर्तित करती रहती है। अतः उससे सतत लोककल्याण अथवा लोकमंगल की आशा करना हथेली पर सरसों उगाने के समान है।

विकेन्द्रीकरण

श्री गुरुजी का सुनिश्चित मत था कि भारत के प्राचीन दूरदृष्टा मनीषियों ने राज्य-सत्ता की इस प्रकृति और उसके साथ-साथ समाज-जीवन में शान्ति-व्यवस्था प्रस्थापित करने की दृष्टि से उसकी अपरिहार्यता स्वीकार करते हुए भी उसे संसार के अन्यान्य देशों की भांति समाज और राष्ट्र का नियन्ता बनाने की मूर्खता नहीं की। इसके विपरीत उसे धर्मदण्ड के अधीन करके जनता-जनार्दन की शक्ति को सर्वोपरि घोषित किया। अतः उनका स्पष्ट रूप से यह कहना था कि राज्य-सत्ता के हाथ में अमर्यादित शक्ति कभी भी नहीं होनी चाहिए और हमारे पूर्वजों ने इसलिए सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को राज्य-सत्ता पर आश्रित न बनाकर समाज-केन्द्रित बनाया था और उसी संजीवनी शक्ति के आधार पर सृष्टि के आदि काल से आज तक नानाविध झंझावातों से जूझते हुए, संघर्ष करते हुए भी वह अजेय बनी हुई है। जबकि संसार की अन्य सभ्यतायें इतिहास के काल-गाल में समा गई हैं। फलस्वरूप राज्य-सत्ता को अपने देश, समाज और राष्ट्र की बाहरी आक्रमणों से रक्षा, समाज के विभिन्न घटकों या सदस्यों और समुदायों के मध्य ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, मत्सर आदि से उत्पन्न होने वाले अन्तर्विरोधों या विवादों और संघर्षों का न्यायपूर्वक निष्पक्ष समाधान करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति, बुद्धि, प्रतिभा और प्रयासों की पराकाष्ठा कर देनी चाहिए। इससे अधिक

अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार राज्य-सत्ता को कतई नहीं करना चाहिए क्योंकि वह राज्य-सत्ता के साथ-साथ उस समाज और राष्ट्र के लिए भी अत्यन्त घातक है जिसके सुव्यवस्थित और शान्तिपूर्ण जीवन का संचालन करने तथा राष्ट्र की सीमाओं को अक्षुण्ण बनाने की जिम्मेदारी उसे सौंपी गई है। इसके अतिरिक्त राज्य-सत्ता के कार्य-क्षेत्र का अनावश्यक विस्तार समाज और उसके अंगभूत नागरिकों की प्रतिभा एवं प्रेरणा को कुण्ठित कर उन्हें विकसित नहीं होने देगा तथा वे राज्य-व्यवस्था पर पूरी तरह आश्रित हो जायेंगे। फलतः "व्यक्ति के विकास के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं। समाज के लिए भी यह हानिकारक है।"

बृहत् पारिवारिक भाव

श्री गुरुजी ने आधुनिक काल में पश्चिमी जगत की वैज्ञानिक तकनीकी और भौतिक प्रगति से चकाचौंध हो रहे अपनी भारत माता के सत्पुत्रों और उनका मार्गदर्शन करने को आतुर दिग्भ्रमित राजनेताओं तथा राजनीतिक दलों को सचेत करते हुए यह भी स्पष्ट किया कि अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा भारत का राष्ट्र-जीवन और उससे अत्यन्त घनिष्ठ रूप से संबंधित भारत की सनातन सामाजिक-व्यवस्था लोक-कल्याण के विरुद्ध नहीं है। किन्तु सच्चे और वास्तविक लोक-कल्याण के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी और पारिवारिक स्वार्थ से ऊपर उठाकर उसे सम्पूर्ण समाज के हित में कार्य करने के लिए संस्कारित और प्रेरित करना होगा। समाज के सभी सदस्यों में बृहत् परिवार के अभिन्न सदस्य होने का भाव उत्पन्न होकर जब उनमें पारस्परिक स्नेह और विश्वास का निर्माण होगा तब उनमें हिमालयसदृश सुदृढ़ सामाजिक अनुशासन का स्वतः संचार हो जाएगा। राजनीति अथवा राज्य-व्यवस्था अपने समस्त नागरिकों में इन उदात्त गुणों की सृष्टि नहीं कर सकती। इसके विपरीत ध्येय की उदात्तता के अभाव में वह अपने अंगभूत निवासी नागरिकों में इन गुणों के होने पर उन्हें नष्ट करने का ही कार्य करती है क्योंकि उसकी कार्यप्रणाली व्यक्ति-व्यक्ति के निजी स्वार्थ को जगाकर उन्हें परस्पर प्रतिस्पर्द्धी बनाते हुए उनका शोषण करने की होती है।

महामंत्र

श्री गुरुजी की यह सुनिश्चित मान्यता थी कि साध्य की उपासना और उसकी प्राप्ति के लिए योग्य साधन की अनिवार्यता या अपरिहार्यता है क्योंकि ऐसा योग्य साधन ही उस वांछित साध्य को संभव बनाने में सक्षम और समर्थ होता है। अतः श्री गुरुजी ने अत्यन्त असंदिग्ध शब्दों में यह स्पष्ट किया कि संघ-निर्माता परमपूज्य डा. केशव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्र में एकता का निर्माण करने के लिए प्रतिदिन एकत्र आने की कार्यपद्धति का सृजन किया और संस्कारों के माध्यम से अनुशासित जीवन व्यतीत करने का महामन्त्र राष्ट्र को देकर उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया।

रा.स्व.संघ ने राज्य-सत्ता की सीमित कार्यक्षमता और सामाजिक व्यवस्था की श्रेष्ठता को हृदयंगम कर ऐसी कार्यपद्धति का विकास और अवलम्बन किया है जिसमें ऊपर उल्लिखित समस्त गुणों का विकास दैनन्दिन संस्कारों के आधार पर स्वतः हो जाता है। इसलिए श्री गुरुजी के शब्दों में "हमारा संगठन केवल समाज के लिए है, अन्य किसी स्वार्थ के लिए नहीं। हम तो यह भी नहीं चाहते कि हमारा नाम हो, संस्था का भी नाम नहीं चाहते और इसलिए संघ का इतना विकास करें कि वह समाज रूप हो जाए।"

श्री गुरुजी ने अपने कथन को सैद्धान्तिक विवेचना तक ही सीमित नहीं रखा अपितु स्वयंसेवकों का आह्वान करते हुए उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि "संघ को समाजरूप बनाने के लिए परिश्रम करना होगा। लोग कम परिश्रम से, निकट के रास्ते से अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहते हैं। अतः उनका यह भी सोचना स्वाभाविक है कि राज्यसत्ता का छोटा मार्ग (शार्टकट) क्यों न अपनाया जाए।"

एकमेव मार्ग

किन्तु जैसा राज्यसत्ता की वास्तविक प्रकृति और स्वरूप स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी यह तथ्य असंदिग्ध शब्दों में प्रतिपादित कर चुके हैं कि राज्य-सत्ता व्यक्ति के अन्तर्निहित सद्गुणों को जाग्रत कर उनका विकास करने के स्थान पर उन में स्वार्थ-भावना भर कर समाज और राष्ट्र-जीवन में विघटनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है,

"अतः राज्यसत्ता के माध्यम से अपना श्रेष्ठतम लक्ष्य प्राप्त करने का वह सरल और छोटा मार्ग नहीं है, अपितु वह दूर का ही रास्ता है। इतना ही नहीं, वह मार्ग तो ध्येय की ओर ले ही नहीं जाता। फिर परिश्रम से डर कर, कर्ममय जीवन का त्याग कर अकर्मण्यता की उपासना करने पर हम सम्पूर्ण समाज में चैतन्य, निरन्तर उद्यम-शीलता, अखण्ड कर्म-प्रवणता कैसे उत्पन्न कर सकेंगे? स्वयं आलसी बन कर दूसरे को परिश्रमी कैसे बना सकेंगे?"

"अतः एक ही मार्ग है और वह है संगठन का। स्वाभिमानी, स्नेहपूर्ण, गुणसम्पन्न, अनुशासित, नित्य उद्यमकारी, राष्ट्र को विश्व में ऊँचा उठाने वाला, सुसंगठित अतः समर्थ समाज ही हमारे सामने लक्ष्य हो सकता है और उसी की हमें उपासना करनी है।"

श्री गुरुजी द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था की हीनता और संगठित सामाजिक जीवन की श्रेष्ठता संबंधी इस अवधारणा अथवा संकल्पना से ही रा.स्व.संघ के कार्य की श्रेष्ठता, गुणवत्ता तथा व्यावहारिकता का सही रूप में आंकलन किया जा सकता है। विक्रमी संवत १९८२ (सन् १९२५) की पावन विजयादशमी से प्रारम्भ हुआ रा.स्व. संघ अपनी इस उदात्त ध्येयनिष्ठा के प्रति अत्यन्त गुरु-गंभीर, अगाध एवं अटूट आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास रखने के कारण दलगत राजनीति और राज्य-व्यवस्था से सर्वथा दूर रहा। यहां तक कि अपने प्रादुर्भाव काल से लेकर १९४७ तक हिन्दू महासभा और कांग्रेस द्वारा संघ के राष्ट्रवादी संगठन का उपयोग अपने लिए करने अथवा उसे अपना कथित 'वालयंटरी भाग' बना लेने के सभी प्रयासों को संघ संस्थापक परम पूज्य डॉ. हेडगेवार की भांति ही श्री गुरुजी ने भी बड़ी नीतिमत्ता और कुशलता के साथ विफल कर दिया।

समाज-जीवन को प्रमुखता

भारत के द्वारा स्वाधीनता अर्जित करने के तुरन्त बाद जब डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी और अन्य अनेकों श्रेष्ठ जनों ने भारत के हिन्दू जीवन-दर्शन पर आधारित एक प्रबल एवं प्रभावी राजनीतिक दल के गठन की अपरिहार्यता बताकर श्री गुरुजी से राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्र का मार्गदर्शन करने का अनुरोध किया तब भी श्री गुरुजी

भारतीय अथवा हिन्दू जीवन-दर्शन पर आधारित राज्य-व्यवस्था की अत्यन्त सीमित भूमिका और उसकी तुलना में पूर्णरूपेण संगठित समाज-व्यवस्था की श्रेष्ठ संकल्पना का विस्मरण नहीं कर सके। उन्होंने डा. मुखर्जी सहित उनके सहयोगियों को अपने पथ पर आगे बढ़ने का शुभाशीष देते हुए उन्हें कतिपय अत्यन्त ध्येयनिष्ठ संघ-स्वयंसेवकों का सक्रिय सहयोग तो प्रदान करा दिया किन्तु रा. स्व. संघ को दलगत राजनीति अथवा राज्य-व्यवस्था के झमेलों और झझंटों से पूरी तरह विलग ही रखा। इस विषय में उनका यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ संघ और उसके द्वितीय सरसंघचालक के रूप में संबंधित विषय का उनके द्वारा किया गया सही आंकलन लक्षावधि स्वयंसेवकों सहित सम्पूर्ण देशवासियों का मार्गदर्शन करने में बहुत अधिक सहायक है। श्री गुरुजी के शब्दों में :-

"राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ देश की राजनीतिक सत्ता अपने हाथ में लेने की आकांक्षा को लेकर निर्मित हुई राजनीतिक संस्था नहीं है। संघ अपनी स्थापना के समय से ही राजनीति, दलबन्दी और सत्ता-संघर्ष से दूर रहा है। इसके द्वार सभी हिन्दुओं के लिए खुले हैं, वे चाहे किसी भी राजनीतिक विचार के हों। संघ के स्वयंसेवकों को इस बात की स्वतंत्रता है कि वे विचारपूर्वक कोई राजनीतिक मत रख सकते हैं और अपनी इच्छानुसार किसी भी संस्था में काम कर सकते हैं। स्वयंसेवकों से केवल यह अपेक्षित है कि वे हिन्दुओं की एकता तथा संस्कृति में विश्वास रखें और उसके लिए कार्य करें तथा अपनी सांस्कृतिक परम्परा की सुदृढ़ भित्ति पर सभी व्यक्तियों के संबंध में अपने अन्दर चिर-बन्धुत्व का भाव निर्मित करने का प्रयत्न करें।"

राज्य और द्रव्य का मिलन घातक

राजनीति और राज्य-व्यवस्था की समुचित व्यवस्था से संबंधित हिन्दू जीवन-दर्शन अथवा संस्कृति की व्याख्या करते हुए श्री गुरुजी ने यह भी स्पष्ट किया है कि राज्य-सत्ता और द्रव्योत्पादन को पूरी तरह अलग रखना ही श्रेयस्कर है। राज्यसत्ता के साथ द्रव्योत्पादन के समस्त साधन और शक्ति के सम्मिलन से राज्य-सत्ता पूरी तरह उन्मत्त हो जायेगी। उनके इस कथन और विश्लेषण की पुष्टि में एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। ईसाइयत की २०वीं शताब्दी के

अन्तिम दशक में जब राज्य शक्ति और आर्थिक शक्ति की पूर्ण केन्द्रीकृत व्यवस्था पर आधारित कम्युनिस्ट शासन- तंत्र का बिखरना तत्कालीन सोवियत संघ सहित पूरे योरप में प्रारम्भ हुआ तब यह रहस्योद्घाटन हो सका कि पूर्वी योरप के रूमानिया नामक देश में कम्युनिस्ट शासन के नियन्त्रण के अन्तर्गत वहां अपने-आपको शोषित-पीड़ित श्रमिक वर्ग के संरक्षक होने का दर्प पालने वाले तत्कालीन कम्युनिस्ट राष्ट्रपति चेचेस्कू की पत्नी रत्नजड़ित हीरे-जवाहरात से युक्त चप्पलें और सैंडिल पहनती थी। स्नान-गृहों में सोने की टोटियां लगी हुई थीं और शौचालयों तथा स्नानागारों तक में दूरदर्शन संयंत्र लगा रखे गये थे।

हिन्दू जीवन-दर्शन अथवा संस्कृति में राज्य-शक्ति और अर्थ एवं वित्तीय शक्ति की पृथकता की उचित व्यवस्था इसलिए की गई है क्योंकि एक ही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह में दोनों शक्तियों के केन्द्रित हो जाने का सम्पूर्ण समाज पर बड़ा गंभीर दुष्परिणाम होता है और समाज सर्वथा दीन-हीन एवं गुलाम होकर पतित हो जाता है और असहनीय अत्याचारों के दो पाटों में पिसकर विद्रोह और क्रांति का मार्ग पकड़ लेता है। किन्तु क्रांति के सफल हो जाने पर राज्य सत्ता पर काबिज होकर कल के त्यागी-तवस्वी, क्रांतिवीर स्वयं निकृष्ट शोषक बन जाते हैं। विश्व भर के विभिन्न देशों में हुई अनेकानेक क्रांतियों का इतिहास ऐसे नारकीय शोषण एवं पाशविक बर्बरता से परिपूर्ण रहा है। फलस्वरूप सम्पूर्ण समाज में शान्ति-व्यवस्था की प्रस्थापना गूलर का फूल बन कर रह जाती है क्योंकि जैसे किसी व्यक्ति ने गूलर फल के पौधे पर उगने वाला फूल आज तक नहीं देखा उसी प्रकार समाज में शान्ति-व्यवस्था प्रस्थापित होना कभी भी संभव नहीं हो पाता। संभवतः आधुनिक समय में अक्तूबर १९४९ में चीन में प्रतिफलित कम्युनिस्ट क्रांति का नेतृत्व करने वाले माओ-त्से तुंग द्वारा प्रत्येक १२-१५ वर्षों के बाद नवीन क्रांति की अपरिहार्यता इसी परिप्रेक्ष्य में अनुभव की गई है।

परिशुद्ध व्यवस्था

श्री गुरुजी के कथनानुसार अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत के भविष्य-द्रष्टा ऋषि-महर्षि-मनीषियों ने सम्पूर्ण समाज को इस

विप्लवकारी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से मुक्ति दिलाकर उसे सच्ची और स्थायी शान्ति प्रदान करने के श्रेष्ठ प्रयोजन से राज्य-सत्ता को धन-सम्पदा हीन तथा धनाढ्य अथवा धनसम्पन्न व्यक्तियों को सत्ताहीन बनाने की व्यवस्था करते हुए उन्हें परस्परावलम्बी, अन्योन्याश्रित बनाने का प्रावधान किया। इसके साथ ही इन दोनों शक्तियों के ऊपर सर्वस्वत्यागी, स्वार्थ-निरपेक्ष, तपस्वी व्यक्तियों के धर्माधिष्ठित न्यायपूर्ण प्रभावी नियंत्रण की व्यवस्था की। इसके पीछे उनका हेतु यही था कि राज्य-सत्ताधारी अथवा धन-सम्पदा एवं भौतिक सुख-साधनों से सम्पन्न कोई भी व्यक्ति शेष समाज का शोषण न कर सके।

हिन्दू संस्कृति और जीवन-दर्शन में इसलिए इस बात का अत्यन्त प्रबल आग्रह किया गया है कि समाज के एक-एक व्यक्ति को यह भावना अपने हृदय में भली प्रकार धारण करना चाहिए कि अपना यह विराट समाज ही अमूर्त परमात्मा का प्रकट रूप है। चूंकि परम पिता परमात्मा ही इस जगत का स्वामी है, अतः यह समाजरूपी परमात्मा ही इस राष्ट्र की सम्पूर्ण धन-सम्पदा और आर्थिक-वित्तीय शक्ति का स्वामी है। इस राष्ट्र का ज्ञान, सत्ता, धन सब कुछ उसी का है। व्यक्ति का दायित्व तो स्वार्थरहित होकर अपने शरीर, शक्ति, ज्ञान, गुण और सम्पत्ति सहित अन्य समस्त साधनों के द्वारा इस राष्ट्र और समाज रूपी परमात्मा की सेवा करना ही है।

श्री गुरुजी के शब्दों में "राज्य सत्ताधीश राज्य का उपभोग शून्य, अधिपति, धन प्राप्त करने वाला धन का उपभोगशून्य रक्षक, न्यासी एवं संवर्धक-इस प्रकार स्वार्थरहित होकर, प्रत्येक के लिए अपने-अपने स्थान से, गुणादिकों से, समाजस्वरूप की एकात्मता का साक्षात्कार कर परमात्मा की सेवा करना ही परम श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।"

इस समाजरूपी परमात्मा के आर्थिक जीवन की समुचित व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में यह सत्परामर्श दिया था कि उद्योगों का निर्माण और संचालन पारस्परिक सहकार्य के आधार पर ही होना अपेक्षित है। अतः उद्योगों से होने वाले लाभ का समुचित वितरण उससे संबद्ध सभी व्यक्तियों में किया जाना चाहिए और राज्य-सत्ता को उन पर अपना सूक्ष्म किन्तु प्रभावशाली निरीक्षण

करने के माध्यम से किसी के साथ भी अन्याय नहीं होने देना चाहिए। इससे औद्योगिक जगत् में टकराव अथवा संघर्ष की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कभी उत्पन्न नहीं होगी और देश तथा समाज में स्थायी शान्तिमय वातावरण के अन्दर पारस्परिक सौहार्द, स्नेह और सहकार्य बना रहेगा तथा इसके साथ ही राष्ट्र और समाज की श्री-वृद्धि होती रहेगी। किन्तु इसके लिए समाज-रूपी परमात्मा के प्रत्येक घटक या सदस्य का शिक्षित, चारित्रयसम्पन्न, गुणवान् तथा स्वार्थशून्य होना आवश्यक है।

मण्डलाकार व्यवस्था

श्री गुरुजी के राजनीतिक चिन्तन में राज्य की शासन-व्यवस्था का भी सूत्र रूप में हिन्दू जीवन-दर्शन के आधार पर सार प्रस्तुत किया गया है। इस हिन्दू संकल्पना या अवधारणा में सम्पूर्ण सृष्टि का स्वरूप मण्डलाकार है। अतः केन्द्र से बाहर की ओर क्रमशः वर्धमान मण्डलों की रचना भारतीय मनीषियों ने प्रस्तुत की है। इस में मण्डलों की रचना समानान्तर न होकर एक केन्द्र-बिन्दु अर्थात् ग्राम से प्रारम्भ होकर राष्ट्र ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि-जगत तक जाती है। इसमें कहीं भी टूटन या विघटन के लिए इस कारण कोई स्थान नहीं है क्योंकि वे मण्डल निरन्तर वर्धमान होते हुए एक-दूसरे से अभिन्न रूप में जुड़े हुए हैं। लेकिन इस वर्धमानता और पारस्परिक घनिष्ठता, अन्योन्याश्रितता के बावजूद कोई भी मण्डल अपना वैशिष्ट्य या विशेषतायें अथवा विविधता को नष्ट न कर उन्हें पूरी तरह बनाए रखता है और उनका संवर्धन अथवा विकास करता जाता है।

विषय को स्पष्ट करने हेतु इस व्यवस्था में यह कहा गया है कि भारतीय-व्यवस्था के अन्तर्गत आधारभूत इकाई एक ग्राम होगी। फिर आस-पास के कुछ ग्रामों को एकजूट कर ग्राम-मण्डल की रचना की जाएगी। तदुपरान्त भौगोलिक अथवा व्यावसायिक आधार पर निर्मित-विकसित विशिष्टता को ध्यान में रखकर इन ग्राम-मण्डलों को संयुक्त कर बड़े मण्डल अथवा जनपद मण्डल बनाये जायेगें। फिर इन जनपद मण्डलों की भौगोलिक, व्यावसायिक, भाषायी, सामाजिक रीति-रिवाज और परम्पराओं आदि की विशिष्टताओं में से अधिकाधिक समानता रखने वाले प्रान्त अथवा प्रादेशिक मण्डलों की रचना होगी। ये प्रान्तीय अथवा प्रादेशिक मण्डल भाषायी आधार पर भी गठित किए जा सकते

हैं और एक से अधिक भाषा-भाषी समाज-बन्धुओं का भी एक प्रान्त या प्रदेश का गठन किया जा सकता है। स्वायत्तशासी आधार पर ग्राम की आधारभूत इकाई से प्रारम्भ होकर ग्रामों के मण्डल, जनपद और प्रान्तों की रचना के ऊपर सम्पूर्ण राष्ट्र की एक इकाई निर्मित होगी जिसमें सभी प्रान्तीय या प्रादेशिक मण्डल उसके अभिन्न और अविभाज्य घटक होंगे।

आधारभूत संरचना

श्री गुरुजी ने हिन्दू जीवन-दर्शन पर आधारित इस सतत विकासमान मण्डलाकार व्यवस्था का सूत्र समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए यह भी स्पष्ट किया कि इस प्रकार की संरचना को अपनाने से देशवासियों के मानस में संगठनात्मक भावनायें बलवती होकर राष्ट्र की एकता और अखण्डता को पुष्ट और सुदृढ़ बनायेंगी तथा विघटनकारी प्रवृत्तियों पर सहज अकुंश लग जाएगा। इसका कारण यह है कि इस संरचना में हमारा झुकाव केन्द्र की ओर होगा तथा जो कुछ विकेन्द्रीकरण होगा, वह केन्द्र से अलग होकर टुकड़े-टुकड़े होने के लिए न होकर अपनी-अपनी स्थानीय और प्रादेशिक या प्रान्तीय विशेषताओं, विविधताओं और गुणधर्मो का विकास करते हुए केन्द्र को बलशाली, पुष्ट और सुदृढ़ बनाने के लिए होगा। श्री गुरुजी के शब्दों में "समाज का आधारभूत ढांचा यही है।"

मोटा सूत्र

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि प्राचीन काल से भारत में ग्राम-समाज को एक आधारभूत इकाई मानकर शासन का स्वरूप पंचायती रखा गया था और यह व्यवस्था भारत में ब्रिटिश शासन की प्रस्थापना होने के समय तक अबाध रूप से चलती रही थी। इस ग्राम पंचायत में भारत की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को ध्यान में रखकर प्रत्येक वर्ग का एक-एक प्रतिनिधि और उनके अतिरिक्त एक प्रतिनिधि वनवासी बन्धुओं का होता था तथा जन-जन की भावनाओं को सही रूप में अभिव्यक्ति करने वाले इन पंचों का समाज में इतना अधिक सम्मान था कि उन्हें 'पंच-परमेश्वर' कह कर सम्बोधित किया जाता था।

यह प्रणाली अपने देश के लोगों कों भली-भांति ज्ञात भी है। पुराने समय से हमारी रचना ग्राम-पंचायतों पर निर्भर रही है। ये पंचायतें ही आगे बढ़कर राजा की अष्टप्रधान-समिति के रूप में योग्य सलाह देने का कार्य करती रही हैं। ये पंचायतें भी उद्योग-धंधों पर ही आधारित थीं। पुराने जमाने में आज जैसा बहुत उलझा हुआ जीवन नहीं रहता था। सादा जीवन था। उनमें चार प्रमुख उद्योग स्वीकार कर लिए गए थे। एक कार्य माना गया उनका, जो विचार करने, पढ़ने-पढ़ाने और धर्म-प्रचार वगैरह करने वाले थे। दूसरे, राज्य की रक्षा करने का दायित्व पूर्ण करने वाले थे। तीसरे, व्यापारी और चौथे में खेती-बाड़ी जैसे अन्य कार्य करने वाले लोग आते थे। पांचवां कार्य उनका माना गया, जो वनों और पहाड़ों पर निर्भर तथा शिकार आदि पर जीवनयापन करते थे। इस प्रकार इन चार वर्णों के चार प्रतिनिधि और पांचवां, जिसे हमारे यहाँ 'निषाद' कहा गया है- ऐसे पांचों मिलकर समाज का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते थे।

श्री गुरुजी का कहना था कि "इस प्रकार के प्रतिनिधि शासन समाज की वास्तविक प्रकृति को अभिव्यक्त करते हैं और जब वे एकत्र आते हैं तो वे राष्ट्र की प्रकृति के समष्टि रूप को ग्रहण कर लेते हैं।"

श्री गुरुजी के शब्दों में "इस प्रकार के समूहों, जिन्हें वर्ण, गिल्ड, सिंडीकेट या ट्रेड यूनियन, चाहे जो नाम दें, के प्रतिनिधियों द्वारा बना हुआ शासन ही वास्तव में सबके हितों की रक्षा कर उनके गुण-वैशिष्ट्य के विकास में सहायक हो सकता है।"

भेदभाव नहीं

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था कालबाह्य हो जाने के कारण, पंचायतों का गठन वर्ण के आधार पर नहीं हो सकेगा। मौलिक बात यह है कि ग्राम की सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व ग्राम पंचायत में होना चाहिए। पूर्व काल में इन प्रतिनिधियों की संख्या 'पांच' ही होने के कारण उसे 'पंचायत' कहा गया था। अब 'पंचायत' नाम तो रहेगा, आज भी है, किन्तु ग्रामीण जनता के प्रतिनिधियों की संख्या 'पांच' से अधिक है। लेकिन नाम 'पंचायत' ही है।

सही मार्गदर्शन

श्री गुरुजी ने रा.स्व.संघ के माध्यम से विक्रमी संवत् १९९७ (सन् १९४०) से लेकर संवत् २०३० विक्रमी (सन् १९७३) के ३३ वर्षीय कालखण्ड में राष्ट्र का मार्गदर्शन किया। आधुनिक भारत के इतिहास में यह कालखण्ड अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण रहा है। किन्तु उस विकट और संकटपूर्ण कालावधि में सर्वप्रथम श्री गुरुजी ने संघसंस्थापक परमपूज्य डॉ. हेडगेवार द्वारा पुनः उद्घोषित हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा को बलवती बनाया। दूसरे महायुद्ध की विभीषिका को दृष्टिगत रख अंग्रेज सरकार द्वारा भारत की समस्त राष्ट्रवादी शक्तियों के दमन-चक्र के घोर झंझावात से संघ नौका को एक अत्यन्त कुशल खेवनहार के रूप में लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करने में उन्होंने अभूतपूर्व दूरदर्शिता का परिचय दिया।

यद्यपि संघसंस्थापक डॉक्टरजी द्वारा संघ को राजनीतिक क्षेत्र से अलग रखने के मूलाधार को सदैव दृष्टिपथ में रख कर श्री गुरुजी ने संसार के सबसे विशाल स्वयंसेवी संगठन को राजनीतिक क्षेत्र से पूरी तरह अलिप्त रखा, फिर भी राष्ट्र के मार्मिक हितों पर आघात होने वाले घटना-चक्र अथवा राष्ट्र-जीवन को आधारभूत रूप से प्रभावित करने वाले विषयों पर मौन साध कर बैठे न रह कर राष्ट्र का सही मार्गदर्शन भी उन्होंने किया। उनके द्वारा दी गई चेतावनी और विरोध की कोई चिन्ता न करके जब राष्ट्रीय नेतृत्व मुस्लिम तुष्टिकरण के आत्मघाती पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता चला गया और जिसके फलस्वरूप १६ अगस्त, १९४६ से तत्कालीन बंगाल प्रान्त के मुस्लिम लीग सरकार के प्रमुख हसन शहीद सुहरावर्दी के प्रत्यक्ष निर्देशन में पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए 'सीधी कार्रवाई' के अन्तर्गत कोलकाता से हिन्दुओं का कत्ले-आम प्रारम्भ हुआ तब श्री गुरुजी के निर्देशन में ही संघ-स्वयंसेवकों ने हिन्दू समाज को सुरक्षा प्रदान करने में प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी थी। १४ अगस्त, १९४७ को मातृभूमि के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के फलस्वरूप जिहादी जुनून में पागल हुए पाकिस्तानी क्षेत्र से अपने लक्षावधि समाज-बन्धुओं को सुरक्षित निकाल लाने का अत्यन्त साहसिक कार्य भी संघ स्वयंसेवकों ने श्री गुरुजी के कुशल मार्गदर्शन में ही किया। इन लक्षावधि विस्थापित

बन्धुओं के पुनर्वसन में भी संघ-स्वयंसेवकों का अतुलनीय योगदान रहा तथा स्वतंत्र भारत की प्रथम सरकार के सभी सदस्यों के सामूहिक हत्याकाण्ड का पर्दाफाश करते हुए उसे विफल बनाने का अत्यन्त गंभीर और महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ।

ज्वलंत घटनायें

श्री गुरुजी की इस विलक्षण नेतृत्व कुशलता से अत्यन्त प्रभावित होकर भारत के तत्कालीन उपप्रधानमंत्री और गृह तथा रियासती मामलों के मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने उन्हें जम्मू-कश्मीर के शासक महाराजा हरिसिंह को अपनी रियासत का विलय भारत में करने के लिए तैयार करने हेतु श्रीनगर भेजा था। श्री गुरुजी के साथ हुई इस वार्ता के परिणामस्वरूप ही महाराजा हरिसिंह जम्मू-कश्मीर का विलय भारत में करने को सिद्ध हुए थे।

परम आध्यात्मिक पुरुष होने के कारण श्री गुरुजी योगिराज भगवान श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ व्यक्ति की भांति ३० जनवरी, १९४८ को महात्मा गांधी की जघन्य हत्या होने के बाद संघ पर झूठा आरोप लगाकर उसे प्रतिबंधित करने और श्री गुरुजी सहित देशभर में संघ के अनेकानेक प्रमुख कार्यकर्ताओं को बन्दी बनाकर जेल में ठूंस देने, अनेकों स्वयंसेवकों की अमानवीय तरीकों से जीवन-लीला समाप्त करने आदि के हलाहल को भगवान शंकर की भांति पी गए।

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि उस अत्यन्त विषम कालखण्ड में देश के सार्वजनिक जीवन में संघ का सही पक्ष रखने वाला एक भी ख्यातिनामा व्यक्ति उसके पक्ष में खड़ा नहीं हुआ। जीवन-मरण का यह घोर संकट-काल एक प्रकार से रा.स्व.संघ और श्री गुरुजी के कुशल नेतृत्व के लिए अग्नि-परीक्षा से कम नहीं था। इतिहास साक्षी है कि इस अग्नि-परीक्षा में रा.स्व.संघ श्री गुरुजी के दूरदर्शी, कर्त्तृव्यवान एवं विलक्षण, प्रतिभा-सम्पन्न मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही कुन्दन की भांति तप कर निकला था। किन्तु इसके बाद भी श्री गुरुजी ने पाण्डवों के वनवास काल में उन्हें चिढ़ाने के लिए ससैन्य दल-बल सहित जाने वाले दुर्योधन को मार्ग में ही चित्रसेन गन्धर्व द्वारा बन्दी बना लिए जाने का समाचार पाने वाले धर्मराज युधिष्ठिर के आदेश

पर भीम और अर्जुन के माध्यम से चित्रसेन का पराभव कर दुर्योधन को बंधन-मुक्त करा देने की भांति सम्पूर्ण देश का प्रवास करते हुए स्थान-स्थान पर प्रतिबन्धकालीन कटुता को पूरी तरह भुला देने और युधिष्ठिर की भांति 'वयं पंचाधिकं शतम्' का सन्देश देकर अपनी विशाल हृदयता का परिचय दिया था। तिब्बत पर चीनी कब्जे, शेख अब्दुल्ला की राष्ट्रघाती कारगुजारियां तथा सन् १९५४ में 'हिन्दी-चीनी, भाई-भाई के कर्णभेदी नारों के मध्य सम्पन्न कथित पंचशील संधि के घातक षड्यंत्र से केन्द्र सरकार सहित सम्पूर्ण देशवासियों को केवल श्री गुरुजी ने ही सचेत किया था।

शासन-मद में चूर उस समय के शासकों ने उनकी इन सामयिक चेतावनियों को केवल अनसुना ही नहीं किया अपितु चीन संबंधी उनके दूरदर्शितापूर्ण सचेत करने वाले वक्तव्य को 'पागल का प्रलाप' कहने तक का दुस्साहस कुछ सिर-फिरे व्यक्तियों और राजनेताओं ने किया था। किन्तु इतिहास साक्षी है कि जम्मू-कश्मीर में शेख अब्दुल्ला और तिब्बत तथा चीन के विषय में श्री गुरुजी द्वारा दी गई चेतावनियां सही सिद्ध हुईं और संघ का घोर विरोध करने वाले देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को अपनी मौजूदगी में २६ जनवरी, १९६३ को दिल्ली में सम्पन्न हुई गणतंत्र दिवस परेड में रा.स्व.संघ के गणवेशधारी स्वयेसेवकों को भागीदार बनाना आवश्यक प्रतीत हुआ।

कम्युनिस्ट चीन द्वारा भारत की पीठ में छुरा घोंपते हुए उसके विरुद्ध किए गए खुले आक्रमण की अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण एवं राष्ट्र के आत्मगौरव और सम्मान को धूल-धूसरित करने वाली दुर्घटना पर टिप्पणी करते हुए सुप्रसिद्ध भक्त श्री रामशरण दास ने कहा था कि "मुझे भली-भांति स्मरण है कि सन् १९६२ से पूर्व ही श्री गुरुजी ने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि चीन भारत पर आक्रमण करेगा, अतः हमें सतर्क रहना चाहिए। जब चीन ने आक्रमण कर दिया तो इस महापुरुष की दूरदर्शिता पर सभी ने आश्चर्य व्यक्त किया।"

कम्युनिस्ट 'मुक्ति' का शिकार तिब्बत

तिब्बत का हृदयविदारक काण्ड सबकी जिह्वा पर है। संसार के सभी राजनेता उसके प्रति अपनी प्रतिक्रियाएं प्रकट कर रहे हैं। आज

विश्व दो गुटों में विभक्त है जिनमें विश्व शांति जैसे महत्वपूर्ण विषय के बारे में एक दूसरे से नितान्त विपरीत दृष्टिकोण है। यह अवस्था उस विश्व शांति के बारे में है जो आज विश्व की प्रमुख शक्तियों के राजनीतिक सर्वेसर्वाओं के मस्तिष्क को परेशान किये हुए है, जो संसार के हर सच्चे शांतिप्रिय नागरिक के हृदय को व्यथित किए हुए हैं। पूर्वाग्रह दोष से युक्त कुछ लोगों को छोड़कर सभी इस बात को भली-भांति समझते हैं कि भारत इन दोनों गुटों में से किसी भी गुट के साथ सम्बन्धित न होकर पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्षता की नीति पर चल रहा है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि गुटनिरपेक्षता का अभिप्राय निस्सहाय की ऐसी निष्क्रियता से नहीं है जिसके कारण हमारे राष्ट्र की प्रतिष्ठा उस दर्शक जैसी हो जाए जो सहानुभूति तो रखता हो किन्तु नपुंसक हो। अपनी इसी गुटनिरपेक्षता की नीति के आधार पर भारत ने तिब्बत के राजनीतिक और धार्मिक सर्वेसर्वा दलाई लामा को शरण देकर पहली बार ही क्यों न हो, साहस का परिचय दिया है। भारत की इस गतिशील गुटनिरपेक्षता की नीति के परिणामों के प्रति संसार के विभिन्न देशों ने जो प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं उनके रूप में तो संसार के दोनों गुटों के बीच विद्यमान तीव्र विरोध ही सामने आया है।

चीनी-रूसी गुट

इन दोनों गुटों में से अधिक सक्रिय तथा लड़ाकू चीनी-रूसी गुट है। उसके साथ उसके अनेक अनुचर राष्ट्र हैं तथा ऐसे अनेक राष्ट्रों में निवास करने वाले अनेक अनुचर लोग हैं, जो अभी तक उक्त गुट के पूरी तरह गुलाम नहीं बन पाए हैं। निश्चय ही कुछ लोग इसका प्रतिवाद करके यह सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि सोवियत संघ के शासकों की किसी प्रकार की कोई स्वार्थी, साम्राज्यवादी आकांक्षाएं नहीं हैं। वे जो कुछ कर रहे हैं वह तो पूँजीवादी और साम्राज्यवादी पश्चिमी शक्तियों के चंगुल से निर्बल लोगों को मुक्त कराने के कार्य में लगे हुए हैं। वे तिब्बत के मामले में भी यही प्रमाण प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे तथा चीन, जो संसार पर राज्य करने के उद्देश्य से गठित सोवियत गुट का एक प्रमुख हिस्सेदार है, के 'पवित्र' इरादों के प्रति शंका व्यक्त करने वालों पर अनेक प्रकार के आरोप लगाएंगे। लेकिन

सच्चाई को समझने के लिए हमें कम्युनिस्ट शब्दावली में प्रयुक्त 'मुक्ति' का अर्थ स्पष्ट रूप से समझना होगा।

हर सम्प्रदाय की अपनी एक भाषा होती है और उनके प्रमुख शब्दों का प्रचलित अर्थ नहीं होता। कम्युनिस्ट प्रणाली ने भी ऐसे शब्द समूह विकसित किए हैं जिनके शब्द तो प्रचलित रहते हैं किन्तु उनके अर्थ प्रचलित अर्थ से बिल्कुल भिन्न होते हैं। उनका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि सामान्य व्यक्ति उनके प्रचलित अर्थों को मस्तिष्क में रखकर उनकी ओर आकर्षित होता है और फिर उससे वह अर्थ स्वीकार कराया जाता है जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की होगी। 'मुक्ति' और उसी भाव को व्यक्त करने वाली मुक्ति सेना आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। पहले तो वे आकर्षित कर लेते हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा वे अपने खूनी पंजे दिखाते हैं लेकिन तब तक समय हाथ से निकल चुका होता है।

पश्चिमी गुट

यह विस्मृत नहीं होना चाहिए कि शाब्दिक मौलिकता का सारा श्रेय केवल चीनी-रूसी गुट को ही नहीं दिया जा सकता। पाश्चात्य जगत् ने भौतिक प्रकृति पर विजय पाने और फलस्वरूप अधिक ऐशोआराम की जिन्दगी बसर करने की दृष्टि से बड़ी प्रगति की, किन्तु जहाँ तक मानव के मस्तिष्क व सांस्कृतिक उपलब्धियों का सम्बन्ध है उनमें वह किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सका है। इसी का परिणाम है कि विगत तीन शताब्दियों में पश्चिमी जगत् की सभी साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपनी विस्तारवादी नीति, नृशंस लूटपाट को नैतिकता का जामा पहनाकर अपनी बुद्धि को शांत करने का प्रयास किया है। संसार के असभ्य लोगों को सभ्य बनाने के नाम पर और इस सिद्धान्त की दुहाई देकर कि संसार के अन्य भागों में अन्धकार में काम करने वाले 'दुपायों' को आदमी बनाने का भार श्वेत लोगों के कन्धों पर है। फलस्वरूप यूरोपीय शक्तियाँ दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया में विनाश और मृत्यु का संदेश लेकर अपने साम्राज्य स्थापित करती हुई, भूखण्डों को उजाड़ती रहीं और कहीं तो वीरान करती रही हैं। ईसाइयत और इस्लाम ने भी अपने विस्तार के लिए किन्हीं श्रेष्ठ साधनों का अवलम्बन नहीं किया। किन्तु

घोषणा सदा यही की कि 'काफिरों' को 'जादू-टोने' के जंगली विश्वासों से निकालकर 'सच्चे खुदा' के पास ले जाया जा रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो 'दोजख' से 'मुक्ति' दिलाकर उन्हें 'बहिश्त' का मार्ग दिखाया जा रहा है।

रूसियों को संकेत

तिब्बत की घटनाओं से रूस के नेता प्रसन्न हो सकते हैं। हो सकता है वे सोंच रहे हों कि उनका मित्र अथवा अनुचर चीन अपना कार्य अच्छी प्रकार कर रहा है और विस्तृत क्षेत्र में सोवियत प्रभाव फैला रहा है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि चीनियों के रग-रग में अहंकार, अहम्मन्यता और हठवादिता कूट-कूट कर भरी हुई है। अतीतकालीन व्यापक चीनी साम्राज्य का आदर्श चीनी भूले नहीं हैं। यदि ऐसे चरित्र वाले एक अनुचर या मित्र का दिमाग प्राप्त होने वाली विजयों से फिर जाए तो वह रूस व रूस की प्रभुता के लिए खतरा सिद्ध हो सकता है तथा कालान्तर में यह भी असम्भव नहीं कि आज का अनुचर आने वाले कल को अति नृशंस स्वामी बन जाए। ऐसी बातें पहले भी हुई हैं तो अब क्यों नहीं हो सकती? आदमी की प्रकृति सदियों के बाद भी वैसी ही है। इसलिए इतिहास की पुनरावृत्ति असंभव नहीं है।

समय रहते उपाय किया तो हो सकता है कि रूस इस हानि से अपनी रक्षा कर सके। तिब्बत काण्ड ने उसे एक अनुपम अवसर प्रदान किया है। यदि आज रूस के नेता चीनी विस्तारवाद को रोककर तिब्बत में दलाई लामा के न्यायपूर्ण सुप्रतिष्ठित शासन को बनाये रखकर उसकी स्वाधीनता को सुरक्षित बनाते हैं तो चीन पर अंकुश रखने में यथेष्ठ सफलता प्राप्त होगी। इससे भी बड़ी बात यह है कि दोनों गुटों के बीच विद्यमान संदेह, भ्रांति और पारस्परिक अविश्वास का वातावरण समाप्त हो जाएगा। इसके परिणामस्वरूप विश्व शांति का मार्ग प्रशस्त होगा तथा उस तनाव का अंत होगा जिसके कारण मानवता आज बुरी तरह त्रस्त है।

विगत १८ मई १९५९ को श्री गुरुजी द्वारा दी गई यह सामयिक चेतावनी कितनी सही सिद्ध हुई है इसकी पुष्टि भविष्य में होने वाली

घटनाओं ने स्वतः कर दी है क्योंकि चीन रूस का पिछलग्गू बनकर नहीं रहा है।

राष्ट्रीय ऐक्य में योगदान

ईसाइयत की २०वीं शताब्दी का अर्द्ध कालखण्ड व्यतीत हो जाने के उपरान्त जब देश में प्रदेशों और राज्यों के पुनर्गठन का आन्दोलन शुरू हुआ और तत्कालीन केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त राज्य पुनर्गठन आयोग ने पंजाबी सूबे की मांग नामंजूर कर दी तब पंजाब का राजनीतिक वातावरण बहुत अशान्त हो उठा। एक ओर अकाली दल के नेतृत्व में पृथक् पंजाबी सूबे की मांग के समर्थन में प्रभावशाली जनान्दोलन आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर उक्त क्षेत्र में आर्य समाज और भारतीय जनसंघ ने उसका उग्र विरोध करके पंजाब का स्वरूप यथावत् बनाये रखने का अभियान छेड़ दिया। यहां तक कि पंजाब के गैर-केशधारी हिन्दू समाज ने अपनी मातृभाषा पंजाबी के स्थान पर हिन्दी घोषित कर दी और उसके लिए पुरजोर आग्रह सार्वजनिक रूप से किया जाने लगा। इससे पंजाब की सामाजिक स्थिति अत्यन्त तनावपूर्ण हो गई और केशधारी तथा गैर-केशधारी बन्धुओं के मध्य जबर्दस्त चौड़ी खाई खड़ी हो गई। हिन्दू समाज और राष्ट्र की एकता, एकात्मता और अखण्डता पर काले बादल मंडराने लगे। ऐसे गंभीर संकट काल में जब देश के सभी राजनीतिक दल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए थे तथा केन्द्र सरकार के हाथ-पांव फूलने लगे थे तब श्री गुरुजी ने राष्ट्रीय एकात्मता, देश की अखण्डता और अपने समाज-बन्धुओं की एकता को सुदृढ़ बनाए रखने के गुरु-गंभीर उद्देश्य को ध्यान में रखकर पंजाब के समस्त निवासियों से अपनी मातृभाषा पंजाबी घोषित करने और उसको विकसित करने का आह्वान किया। उनके इस उद्बोधन का इतना सकारात्मक परिणाम हुआ कि शताब्दियों से इस राष्ट्र के हिन्दू समाज में केशधारी और गैर-केशधारी बन्धुओं के मध्य रोटी-बेटी और एक ही राष्ट्रीय जीवन-धारा का अभिन्न अंग होने का जो प्रबल एवं अटूट भाव चला आ रहा था, वह पूरी तरह सुरक्षित हो गया तथा भारत के सीमान्त प्रदेश में हिन्दू समाज को क्षत-विक्षत करने का राष्ट्रघाती षड्यंत्र पूरी तरह विफल हो गया।

श्री गुरुजी के निधन होने पर उनके इस महत् योगदान की चर्चा करते हुए अकाली दल के जत्थेदार सरदार संतोष सिंह ने कहा था कि "श्री गुरुजी के देहावसान से सिक्ख सम्प्रदाय की भारी क्षति हुई है। उनके सामने खड़े होकर हिन्दू-सिक्ख का भेदभाव समाप्त हो जाता था।" यही कारण है कि जब सन् १९६४ में श्री गुरुजी की प्रेरणा से स्वामी चिन्मयानन्द के मुम्बई-स्थित संदीपनि आश्रम में विश्व हिन्दू परिषद् की प्रस्थापना का पवित्र संकल्प लिया गया तक उसमें अकालियों के सर्वप्रमुख नेता मास्टर तारा सिंह उसके एक संस्थापक सदस्य के रूप में भागीदार बने थे। संसार भर में बौद्धों के श्रद्धा केन्द्र पूज्य दलाई लामा भी उन्हीं अनेकों प्रमुख संस्थापक सदस्यों में से एक थे। इस प्रकार श्री गुरुजी की दूरदर्शिता, नेतृत्व-कुशलता एवं राष्ट्रवादी एकजुटता की संकल्पना के आधार पर ही हिन्दू समाज के समस्त पंथो और उपपंथों को संगठित एवं एकजुट कर पाने का पुनीत अभियान का रथ आगे बढ़ने लगा।

श्री गुरुजी के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य पर टिप्पणी करते हुए अपने समय के सुप्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'दिनमान' (टाइम्स ऑफ इण्डिया समूह) ने उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए लिखा था कि "अपने जीवन में श्री गोलवलकर ने इस बात का प्रयास किया था कि हिन्दू समाज में विभिन्न पंथों के आचार्य मिलकर एक समरस समाज़ के निर्माण का सर्वसम्मत मार्ग तय करें। इसी सिलसिले में उन्होंने चारों शंकराचार्यों को एक ही मंच पर खड़ा किया था।"

संकट काल में निर्देशन

प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के शासन-काल में पाकिस्तान ने एक बार पुनः भारत पर सशस्त्र आक्रमण किया। भारत ने उसका सशस्त्र प्रतिकार किया। उस संकट की घड़ी में प्रधानमंत्री श्री शास्त्री जी का श्री गुरुजी की नेतृत्व क्षमता और उनके मार्ग दर्शन में संघ-स्वयंसेवकों की कर्त्तव्यपरायणता पर इतना अगाध विश्वास था कि उक्त युद्ध के दौरान भारत सरकार ने भारत की राजधानी दिल्ली की सम्पूर्ण यातायात व्यवस्था का संचालन उनके हाथों में सौंप दिया था जिसे स्वयंसेवकों ने पूर्ण ध्ययेनिष्ठा के साथ पूर्ण किया।

ईसाइयत के सन् १९७१ के अन्त में पाकिस्तान के साथ भारत का तीसरा युद्ध हुआ। यह तथ्य सर्वविदित है कि तत्कालीन पाकिस्तान के पूर्वी भाग, पूर्वी बंगाल अथवा पूर्वी पाकिस्तान में पाकिस्तानी सैनिक तानाशाह याह्या खां के नेतृत्व में पाकिस्तानी सैनिकों ने बर्बर कहर बरपा रखा था। लाखों लोग अपनी प्राणों की रक्षा हेतु वहां से पलायन कर भारतीय क्षेत्रों में शरण लेने को विवश हो गए थे। उस समय भारत के प्रधानमंत्री पद पर श्रीमती इन्दिरा गांधी विराजमान थीं। उनका संघ-विरोध जग जाहिर था। किन्तु श्री गुरुजी ने इस मत-भिन्नता की तनिक भी चिन्ता न करके राष्ट्र-हित को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की और उनके सफल निर्देशन में संघ स्वयंसेवकों ने तत्कालीन पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा पर धुर युद्ध के मोर्चे तक भारतीय सैनिकों को सभी प्रकार की आवश्यक रसद और सैन्य सामग्री पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य अनेक बार अपने जीवन को दांव पर लगाकर किया था। संघ स्वयंसेवकों की इस निःस्पृह एवं निःस्वार्थ राष्ट्र-निष्ठा में दीक्षित करने के श्री गुरुजी के अतुलनीय योगदान की चर्चा करते हुए सुप्रसिद्ध समाजवादी नेत्री श्रीमती मृणाल गोरे ने कहा था कि "प्रकाश के बाहर रहकर किसी संगठन में जीवन भर कार्य करना कोई सरल बात नहीं। गोलवलकर गुरुजी ने यह कर दिखाया।"

इसी भांति अनन्य एवं अद्वितीय राष्ट्रभक्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के परम सहयोगी और समाजवादी नेता श्री समर गुहा के शब्दों में, "श्री गोलवलकर देशभक्त थे और उन्होंने राष्ट्रीय कार्यों में देशभक्ति, समर्पण और सेवा के भाव देश के हजारों तरुणों में विगत चालीस वर्षों तक संचारित किए।"

इन कतिपय राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रसंगों का उल्लेख मात्र ही इस संक्षिप्त पुस्तिका में कर पाना संभव है क्योंकि रा.स्व.संघ के सरसंघचालक के गुरुत्तर दायित्व को संभालते हुए श्री गुरुजी ने राष्ट्र-जीवन से संबंधित किसी भी महत्वपूर्ण अथवा संवेदनशील विषय पर संघ-स्वयंसेवकों सहित सम्पूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शन करने का निर्हेतुक एवं अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। उनके जीवन-काल में अपनी पावन मातृभूमि का राजनीतिक रूप से नेतृत्व करने वाली केन्द्र सरकार ने जब कभी राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों

में उनको आमंत्रित किया तब उक्त अवसरों पर राष्ट्रहित को सर्वोपरि प्रमुखता देकर उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अपनी बात कहने में कभी संकोच नहीं किया और इस प्रकार अपने राष्ट्र का सही मार्गदर्शन किया।

आप्त वचन

उनके इस धीर-गंभीर-उदात्त और राष्ट्र-समर्पित जीवन को दृष्टि-पथ में रख कर उनके दिवंगत होने पर आचार्य बिनोबा भावे ने उन्हें अपनी भावांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि "श्री गोलवलकर में संकीर्णता लेश-मात्र भी नहीं थी। वे हमेशा उच्च राष्ट्रीय विचारों से कार्य करते थे। श्री गोलवलकर को आध्यात्म से गहरा प्रेम था। वे इस्लाम, मसीही आदि अन्य धर्मों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे और यह अपेक्षा करते थे कि भारत में कोई अलग न रह जाए।"

अहोरात्र सन्नद्ध स्थिति

श्री गुरुजी के जीवन-काल में दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर अन्तरराष्ट्रीय जगत और राजनीति में जबर्दस्त शीत-युद्ध चल रहा था। उस कालखण्ड में अपने देश में अमेरिका के प्रभुत्व के अन्तर्गत पश्चिमी देशों अथवा उस समय के सोवियत संघ या रूस की अगुवाई में चल रहे दोनों शक्ति गुटों में से किसी एक के साथ अपना गठजोड़ करके अमेरिका अथवा रूस का पिछलग्गू या दुमछल्ला बन जाने का प्रबल समर्थन करने वाले राजनेताओं और राजनीतिक दलों का देश में कोई अभाव नहीं था। दोनों पक्षों के समर्थकों द्वारा अपने दृष्टिकोण के पक्ष में बड़े गुरु-गंभीर तर्क दिए जा रहे थे। किन्तु उस कालखण्ड में भी श्री गुरुजी हिमालय के समान दृढ़ रह कर बड़े ही आत्मविश्वास के साथ देशवासियों में अतुलनीय बल-सामर्थ्य का निर्माण करने तथा दोनों महाशक्तियों में से किसी भी एक का पिछलग्गू न बनने का आत्मगौरव सम्पन्न सन्देश दे रहे थे। उनके शब्दों में, "अपने राष्ट्र-जीवन को अक्षुण्ण रखते हुए जागतिक संघर्ष में भी अपने राष्ट्र का उत्कर्ष करने के लिए यदि किसी बात की आवश्यकता है तो वह है शुद्ध राष्ट्र-भाव को जाग्रत कर उसको शक्ति-सम्पन्न एवं चैतन्ययुक्त बनाना।" फलतः श्री गुरुजी भारत को परम बलशाली

परमाणु शक्ति बनाने के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि "आज तो बल उत्पन्न करने का कार्य सर्वप्रथम प्राथमिकता है। यह बल किसी तात्कालिक समस्या के कारण चाहिए ऐसी बात नहीं। अपितु वह तो सदा-सर्वदा के लिए चाहिए। संकट आए तो काम करो और संकट हल हो जाए तो सो जाओ, यह नीति हमने क़भी नहीं रखी। राष्ट्र को तो अहोरात्र सन्नद्ध स्थिति में ही रहना चाहिए।"

उनके इस धीरोदात्त जीवन के संबंध में उनके देहावसान होने पर 'नवभारत टाइम्स' नामक सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था कि "यह एक ऐतिहासिक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र का एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में तब तक निर्माण नहीं किया जा सकता, जब तक उसमें उन्हीं गुणों का समावेश नहीं होगा, जिनका श्री गोलवलकर जी के जीवन में आविष्कार हुआ था।"

राज्य का असांप्रदायिक स्वरूप

हिन्दू जीवन में राज्य सदा असांप्रदायिक रहा है और अभी भी है। हिन्दू धर्म की अवधारणा से दूर जाने के कारण प्रथम बार अशोक के समय में सांप्रदायिक धार्मिक राज्य का निर्माण हुआ था। बाद में विभिन्न मुसलमान वंशों के अहिन्दू राज्य तथा मुगलों के साम्राज्य सांप्रदायिक राज्य थे। यह ज्ञात रहना चाहिए कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध शिवाजी के नेतृत्व में हिन्दू शक्ति का जो निर्माण हुआ था, वह हिन्दू परम्परा के अनुसार एक असांप्रदायिक राज्य था। जहां हिन्दू और मुसलमान राज्य में उच्च स्थान प्राप्त कर सकते थे और उनका धर्म नागरिक जीवन के लिए बाधास्वरूप न था। सचमुच अपने देश में राज्य के असांप्रदायिक होने पर उसे असांप्रदायिक विशेषण देकर महत्व देना निरर्थक है तथा यह अपने देश की, विशेषतया हिन्दू जाति की परम्परा और संस्कृति का दुःख प्रद अज्ञान ही प्रदर्शित करता है। इस संबंध में यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारतीय संविधान सभा ने भारत के संविधान की रचना करते समय उसकी उद्देशिका में असाम्प्रदायिक अथवा सेकुलर शब्द का प्रयोग इसीलिए नहीं किया था कि यह तो भारत की सनातन परम्परा है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ देश के अहिन्दू नागरिकों सें शून्य हिन्दू-राज्य का प्रतिपादन नहीं करता। हमने इस विचार को ऊंची

उड़ान भरने वाली कल्पना तथा प्रबल भावावेश से उत्पन्न एक भूल ही समझा है तथा इस विषय पर विचार का अनौचित्य समझ कर सदा इसकी अवहेलना ही की है।

रामराज्य का आदर्श

अपने देश में राम-राज्य को आदर्श माना गया है क्योंकि उसमें शान्ति का साम्राज्य छाया था, लोग धर्म और कर्त्तव्य का पालन करते थे, सुखी और वैभव का जीवन बिताते थे। श्रीरामचन्द्र जी के जीवन के ये पहलू; जैसे परिस्थिति का आकलन करने की क्षमता, राजनीतिक सूक्ष्म दृष्टि, राजनीतिज्ञता, अपना सब कुछ समर्पित कर जनसेवा का व्रत, दुष्टों का निर्दलन, दुष्टों के चंगुल से निष्पाप लोगों की मुक्ति और रक्षा, धर्म का अभ्युथान अर्थात् समाज की धारणा, जिससे विषमता का निर्मूलन, विभेदों में सामंजस्य, परस्पर शत्रुता का निवारण तथा विपुल विविधता में प्रकट होने वाले जन-जीवन में मौलिक एकता का साक्षात्कार होता है, इन पहलुओं के कारण उस समय की समस्याओं का निवारण हुआ; आज भी हमें वर्तमान समस्याओं का समाधान तथा अपने देश में राम-राज्य की पुनर्स्थापना के लिए उनका गहराई से अध्ययन कर, उनसे उचित शिक्षा ग्रहण कर, उन्हें आत्मसात कर आचरण में लाना होगा।

मानव का नेतृत्व करने वाले लोगों में, सार रूप में जिन गुणों की आवश्यकता है और रामराज्य की प्रतिष्ठापना की जो पूर्व पीठिका है, वह है पूर्णतया शुद्ध व्यक्तिगत जीवन, समाज के सुख-दुःख में समरस होने की क्षमता और परिणामतः स्वयं स्वीकृत आत्मसंयमी जीवन, अजेय सैनिक शौर्य द्वारा भी जनता के इन क्लेशों को उत्पन्न करने वाली आक्रामक शक्तियों का दमन करने का चातुर्य, सत्य के प्रति प्रेम, वचन पालन का संकल्प, फिर उसके लिए चाहे जो त्याग करना पड़े और जन-हित-सिद्धि के हेतु परिपूर्ण आत्मसमर्पण, चाहे उसके लिए फिर कितने ही त्याग की आवश्यकता (उदाहरणार्थ सीता देवी का त्याग) हो और सबसे महत्वपूर्ण बात है समाज के धर्म एवं संस्कृति पर अटल निष्ठा। ये तथा अन्य अनेक गुण जो श्रीरामचन्द्र जी के इस महान् जीवन में प्रकट हुए हैं, उन्हें समस्त देशवासियों को अपने अन्दर निर्माण करने की आवश्यकता है।

मुस्लिम विरोधी नहीं

प्रायः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और श्री गुरुजी को मुस्लिम-विरोधी घोषित कर उनके धवल चरित्र और स्वरूप को लांछित करने की कुचेष्टा क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थवश की जाती रही है। किन्तु उनका यह दुष्प्रचार कितना निराधार और निरर्थक है उसकी जानकारी हमें उनके निधन पर पटना के एक प्रमुख मुसलमान कांग्रेस नेता हफीजुद्दीन कुरेशी के इन शब्दों में अभिव्यक्त श्रद्धांजलि से प्राप्त होती है। उनका कहना था कि "श्री गोलवलकर साम्प्रदायिक नहीं थे। वे मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे। मुस्लिम-विरोध के नाम पर अब तक मुसलमानों को संघ के नाम पर बरगलाया जाता रहा है।" सुप्रसिद्ध मुसलमान पत्रकार डा. सैफुद्दीन जिलानी ने बड़ी ही बेबाकी के साथ इस सत्य को स्वीकार किया है कि श्री गुरुजी मुसलमानों के सबसे बड़े हितैषी थे। उनके शब्दों में "ईमानदारी के साथ मुझे लगता है कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने के विषय में एकमात्र श्री गुरुजी ही हैं, जो यथोचित मार्गदर्शन कर सकते हैं।"

श्री गुरुजी और देश के सार्वजनिक जीवन से संबंधित राजनीतिक पक्ष सहित सभी क्षेत्रों के विषय में एक सर्वाधिक और आधारभूत तत्व या पहल का स्मरण हमें सदैव रखना चाहिए कि उनकी प्रेरणा से अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, भारतीय जनसंघ, वनवासी कल्याण आश्रम, विश्व हिन्दू परिषद्, विवेकानन्द केन्द्र, भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ आदि अनेकानेक संगठनों का निर्माण राष्ट्र-जीवन के विविध क्षेत्रों को हिन्दू जीवन-दर्शन के आधार पर संचालित करने हेतु संघ के अनेक निष्ठावान स्वयंसेवकों द्वारा किया गया। किन्तु श्री गुरुजी ने अपने जीवन-काल में कभी भी उनको रीति-नीति, कार्यप्रणाली, नीति-निर्धारण, सांगठनिक संरचना आदि किसी भी मामले में कभी भी हस्तक्षेप नहीं किया।

श्रद्धांजलियां

अन्त में लोकनायक जयप्रकाश नारायण और अपने संघ-विरोध के लिए अत्यन्त मुखर श्री आर.के.करंजिया के संपादकत्व में

प्रकाशित होने वाले पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अत्यन्त लोकप्रिय साप्ताहिक पत्र 'ब्लिट्ज' में श्री गुरुजी के निर्वाण पर उनके प्रति अर्पित किए गये श्रद्धा-सुमनों से अपनी लेखनी को विराम देना उचित एवं वांछनीय प्रतीत होता है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के शब्दों में "श्री गोलवलकर जी का सम्पूर्ण जीवन तपोमय था। वे तो त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। पूज्य महात्मा जी और उनसे पूर्व जन्मे देश के महापुरुषों की परम्परा में ही पूज्य श्री गुरुजी का भी जीवन था।"

'ब्लिट्ज' के सम्पादक श्री आर.के. करंजिया ने श्री गुरुजी को अपनी भाव-भीनी श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए लिखा था कि "श्री गोलवलकर कुलपति की उस महान परम्परा के थे, जो पूरे कुल को चलाता व उसका रक्षण करता था। अच्छा हो, यदि कुछ राजनीतिक नेता उनके समर्पित जीवन के उदाहरण का अनुसरण करें और अनुयायियों का सम्मान और विश्वास अर्जित करें।"

जीवन परिचय पूज्य श्री गुरूजी

* *पूरा नाम*: पू. माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर।
* *माता-पिता*: वन्दनीया लक्ष्मीबाई, श्री सदाशिवराव। माता-पिता की नौ संतानों में अकेले जीवित थे। *जन्म*: फाल्गुन कृष्ण एकादशी (विजया एकादशी) विक्रम संवत् 1963 तदनुसार 19 फरवरी 1906, नागपुर।
* अन्य धर्मों के ग्रंथों का भी गहन अध्ययन। बाईबिल का गलत संदर्भ आने पर अपने ईसाई प्रधानाचार्य गार्डिनर को टोका।
* 1928 में एम.एस.सी. (जीव विज्ञान) की परीक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उतीर्ण तथा 1931 से 33 तक वहीं पर अध्यापन। 'गुरू जी' उपनाम विद्यार्थियों के स्नेह के कारण मिला। यही से संघ के संपर्क में आए।
* 1934 में नागपुर की तुलसीबाग शाखा के कार्यवाह बनें तथा इसी वर्ष कार्य विस्तार के लिए मुम्बई गए।
* 1935 में नागपुर से एल.एल.बी. की परीक्षा उतीर्ण की।
* 1936 में अमिताभ महाराज के साथ दीक्षा लेने स्वामी अखंडानन्द जी के सागरगाछी आश्रम गये।
* 13 जनवरी 1937 को दीक्षा प्राप्त हुई। इसी वर्ष अपने गुरू के निधन के बाद नागपुर वापस।
* 1939 में ही कलकत्ता कार्य विस्तार हेतु गए।
* बाबाराव सावरकर की "राष्ट्र-मीमांसा" पुस्तक का अनुवाद किया जो 'वी–आवर नेशनहुड डिफाईन्ड' (We–Our nationhood defined) नाम से छपी। 13 अगस्त 1939 को सर कार्यवाह बनें।
* 3 जुलाई 1940 को प्रथम सरसंघचालक प्रणाम उन्हें दिया गया।
* "मैं डा. हेडगेवार का दाहिना हाथ था तो गुरूजी उनके हृदय थे" अप्पाजी जोशी का वकील महोदय को उत्तर।
* देश विभाजन के समय (8 अगस्त, 1947 तक) पंजाब व सिंध प्रांत का प्रवास किया।
* महात्मा गाँधी की हत्या पर शाखाओं पर 13 दिन का शोक रखने हेतु सर्वदूर तार द्वारा संदेश।
* संघ पर प्रतिबंध: 1 फरवरी 1948 को गिरफ्तार जबकि संघ पर प्रतिबंध 4 फरवरी को लगा।
* 44 दिनों के सत्याग्रह में 77,090 स्वयंसेवक पूज्य गुरूजी के आह्वान पर जेल गए।
* विश्व हिन्दू परिषद् जैसे अनेकों संगठनों की शुरूआत की। वर्ष भर में पूरे देश की तीन बार परिक्रमा करते थे तथा लगभग 40,000 पत्र लिखे।
* 18 अक्टूबर 1947 को कश्मीर के महाराजा से भेंट, कश्मीर का भारत में विलय।
* भारत पर चीन के आक्रमण का पूर्व संकेत दिया।
* 3 मई, 1970 को कर्क (कैंसर) रोग है इसकी जानकारी हुई। (बीमारी में भी 23-25 मई, 1970 को प्रतिनिधि सभा में उपस्थित रहें।) 1 जुलाई को टाटा मेमोरियल, मुंबई में शल्य-क्रिया।
* 2 अप्रैल, 1973 को रामटेक स्थित अपना घर 'भारतीय उत्कर्ष मंडल' नामक संस्था को दान कर दिया।
* 5 जून 1973 को महाप्रयाण। 'भारत माता की जय' प्रार्थना की यह अंतिम पंक्ति उनके मुँह से निकले अन्तिम शब्द थे।

लेखक –डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी

परिचय –राजनीति शास्त्र के वरिष्ठ प्राध्यापक रहे। महान लेखक एवं चिंतक।

सहयोग राशि: चार रू. मात्र